विषय	हिन्दी
प्रश्नपत्र सं एवं शीर्षक .	P1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास
इकाई सं एवं शीर्षक .	M3 : रासो साहित्य की परम्परा
इकाई टैग	HND_P1_M3
प्रधान निरीक्षक	प्रो. रामबक्ष जाट
प्रश्नपत्र संयोजक-	डॉ. स्मिता चतुर्वेदी
इकाई लेखक-	डॉ. ओमप्रकाश सिंह
इकाई-समीक्षक	प्रो. हरिमोहन शर्मा
भाषा-सम्पादक	प्रो. देवशंकर नवीन

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. उपदेशमूलक रासो ग्रन्थ
4. शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ
5. वीररसात्मक रासो ग्रन्थ
6. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप –

- हिन्दी के आदिकालीन साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रास, रासक या रासो के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख रासो ग्रन्थों से परिचित हो सकेंगे।
- रासो ग्रन्थों की विशेषताएँ समझ सकेंगे।

2. प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का आरम्भिक काल 'आदिकाल' के नाम से जाना जाता है। साहित्य के अलग-अलग कालों में अलग-अलग काव्य परम्पराएँ विकसित होती रहती हैं। आदिकाल भी इसका अपवाद नहीं है। इस कालखण्ड में अनेक साहित्यिक परम्पराएँ विकसित हुईं, पर जो काव्य परम्परा विशेष रूप से चर्चित हुई, उसे रासो काव्यधारा के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रासो काव्य परम्परा के कारण इस काल को वीरगाथा काल के नाम से भी अभिहित किया। 'रासो' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यह मतभेद नया नहीं पुराना है। किसी ने 'रासो' शब्द की उत्पत्ति राजसूय से मानी है, तो किसी ने रसायन, रहस्य, राजयश, रासक, रास आदि शब्दों से। ऐसा लगता है कि 'रासो' का सम्बन्ध 'रास' शब्द से है। रास रचाने कि क्रिया का वर्णन हमें श्रीमद्भागवत से ही मिलने लगता है। रास में नृत्य और गीत प्रधान होते हैं। 'रासो' एक परम्परागत काव्य रूप है। ऐसा काव्यरूप जिसका सम्बन्ध नृत्य और गीत से रहा है। इस परम्परा का विकास संस्कृत या अन्य किसी परम्परा से न होकर अपभ्रंश की परम्परा में हुआ है। आदिकालीन साहित्य में रासो ग्रन्थों की परम्परा दो रूपों में विकसित हुई है –

1. नृत्य-गीतपरक धारा
2. छन्द वैविध्यपरक धारा

इन धाराओं में अनेक रासो ग्रन्थ लिखे गए हैं। रासो ग्रन्थों की परम्परा जैन कवियों से मिलने लगती है। इस धारा के कवियों ने पर्याप्त मात्रा में रासो ग्रन्थों की रचना की। इसी के साथ-साथ जैनेतर कवियों के भी अनेक रासो ग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। काव्य विषय की दृष्टि से रासो ग्रन्थों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है –

1. उपदेशमूलक रासो ग्रन्थ
2. शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ
3. वीररसात्मक रासो ग्रन्थ

रासो ग्रन्थों की परम्परा के अध्ययन के लिए यही तीनों वर्ग सर्वाधिक उपयोगी हैं।

3. उपदेशमूलक रासो ग्रन्थ

रासो काव्य में पर्याप्त संख्या में ऐसे ग्रन्थों का सृजन हुआ है, जो धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। इन ग्रन्थों में धर्मोपदेश की प्रधानता है। ये ग्रन्थ अधिकांशत: जैन कवियों द्वारा लिखे गए हैं। इस परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ निम्नलिखित हैं –

3.1. उपदेश रसायन

नृत्य-गीतपरक रास परम्परा की सबसे प्राचीन रचना *उपदेश रसायन* है। इस ग्रन्थ के रचयिता श्री जिनदत्त सूरि हैं। इस रचना में रचनाकाल का उल्लेख नहीं है, पर जिनदत्त सूरि की एक अन्य रचना संवत् 1200 वि. के आसपास की है। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने इसका रचनाकाल भी संवत् 1200 वि. के आसपास निश्चित किया है। *उपदेश रसायन* की रचना अपभ्रंश भाषा में हुई है और इसमें काव्य तत्त्व का नितान्त अभाव है। इस रचना में प्रयुक्त छन्द चउपई है तथा इसका विषय धर्मोपदेश और धर्म की मार्मिक विवेचना है। यह रचना बत्तीस छन्दों में समाप्त हुई है। यद्यपि इस ग्रन्थ में रास या रासो नाम का उल्लेख नहीं हुआ है, पर इसके टीकाकार जिनपाल उपाध्याय ने इसे रासक माना है।

3.2. बुद्धिरास

बुद्धिरास की रचना शालिभद्र सूरि ने की है। इस ग्रन्थ में भी रचनाकाल का उल्लेख नहीं है। अनुमान के आधार पर कहा जाता है कि इसकी रचना संवत् 1241 वि. के लगभग हुई होगी। दरअसल इसी कवि की एक रचना *भरतेश्वर बाहुबली रास* है। इस रचना का प्रणयन संवत् 1241 वि. में हुआ था। इसी आधार पर *बुद्धिरास* को भी उसी के आसपास की रचना मानते हैं। *उपदेश रसायन* की भाँति *बुद्धिरास* का विषय भी धर्मोपदेश है। यह रचना 63 छन्दों में समाप्त हुई है। भूले हुए लोगों को धर्म की शिक्षा देना इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य है।

3.3. जीवदयारास

जीवदयारास की रचना आगसु कवि ने संवत् 1257 वि. में की थी। इस रचना के नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें जीवों पर दया करने का उपदेश दिया गया है। माताप्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ को *दया-धर्मोपदेश* कहा है। उपदेश तत्त्व की प्रधानता होने के कारण इस ग्रन्थ में काव्य-तत्त्व का अभाव है।

3.4. चन्दनबाला रास

चन्दनबाला रास की रचना भी आगसु कवि ने की है। इस रचना में भी रचना काल का उल्लेख नहीं है। आगसु कवि की ही रचना *जीवदया रास* है और इसका प्रणयन सं. 1257 वि. में हुआ था। इसी आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि *चन्दनबाला रास* की रचना भी संवत् 1257 वि. के आसपास हुई होगी। इस रचना में कुल 35 छन्द हैं। इसकी रचना जालौर में हुई थी। चन्दनबाला की धार्मिक कथा का प्रचार-प्रसार करना इस रचना का मूल प्रतिपाद्य है। इस ग्रन्थ में दोहा तथा चउपई छन्द का प्रयोग किया गया है।

3.5. रेंवतगिरि रासु

रेंवतगिरि रासु की रचना श्री विजयसेन सूरि ने की है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं. 1288 वि. है। *रेंवतगिरि रासु* में गिरनार के जैन मन्दिरों के जीर्णोद्धार की कथा कही गई है। यह ग्रन्थ 72 छन्दों में समाप्त हुआ है और इसकी रचना सौराष्ट्र में हुई है।

3.6. सप्तक्षेत्रि रासु

सप्तक्षेत्रि रासु के रचनाकार का नाम अब तक अज्ञात है। यह माना जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना संवत् 1327 वि. के आसपास हुई थी। इस ग्रन्थ में कुल 119 छन्द हैं। ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है – जैन धर्म के सप्त क्षेत्रों – जिन मन्दिर, जिन प्रतिमा, ज्ञान, साध्वी, साधु, श्रावक और श्राविका की उपासना का वर्णन।

3.7. कच्छूलि रास

कच्छूलि रास के रचनाकार का नाम भी अज्ञात है। इस ग्रन्थ का प्रणयन संवत् 1363 वि. में हुआ है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य भी धार्मिक है। एक जैन तीर्थ स्थल कच्छूलि ग्राम के नाम से मशहूर है। इस तीर्थ स्थान का वर्णन करना रचना का मूल उद्देश्य है। इस ग्रन्थ में कुल 35 छन्द हैं।

उपदेशमूलक रासो ग्रन्थों की संख्या काफी अधिक है। यहाँ सभी ग्रन्थों पर बात कर पाना न तो सम्भव है और न ही प्रासंगिक। यहाँ कुछ खास उपदेशमूलक रासो ग्रन्थों की ही चर्चा हुई है। इन ग्रन्थों के विश्लेषण से जाहिर है कि इस कोटि की रासो रचनाओं में काव्य गुण का अभाव है। इन रचनाओं के माध्यम से अधिकतर जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। स्पष्टतः साहित्यिक दृष्टि से इन रचनाओं का विशेष महत्त्व नहीं है।

4. शृंगारमूलक रासो ग्रन्थ

शृंगारमूलक रासो ग्रन्थों की श्रेणी में आने वाली रचनाएँ शृंगार रस से परिपूर्ण हैं। नायक और नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए विरह की स्थितियों का विस्तृत वर्णन करना ऐसी रचनाओं का मूल उद्देश्य है। कुछ महत्त्वपूर्ण शृंगारमूलक रासो ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है –

4.1. सन्देश रासक

सन्देश रासक की रचना तिथि ज्ञात नहीं है। यह निश्चित है कि *सन्देश रासक* ग्यारहवीं शताब्दी की रचना है और इसके रचनाकार अद्दहमाण (अब्दुर्रहमान) हैं। अब्दुर्रहमान म्लेच्छ देश के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम मीरहुसेन था। *सन्देश रासक* की रचना 223 छन्दों में हुई है। इसमें 22 प्रकार के छन्द व्यवहृत हुए हैं। इस ग्रन्थ का विषय विप्रलम्भ शृंगार है जिसका अन्त मिलन में होता है। विजयनगर (जैसलमेर) की एक विरहिणी नायिका अपने परदेशी पति के पास सन्देश भेजना चाहती है। उसे एक पथिक आता हुआ दिखाई देता है। उस पथिक को रोककर वह अपने पति के लिए सन्देश देती है। सन्देश का सिलसिला इतना लम्बा है कि वह समाप्त ही नहीं होता। ज्योंही पथिक चलने के लिए उद्यत होता है, वह कुछ कहने लगती है। इसी क्रम में कवि ने षट्ऋतु वर्णन किया गया है। षट्ऋतु वर्णन समाप्त होते ही पथिक चल पड़ता है और उसी समय विरहिणी को पति आता हुआ दिखाई पड़ता है। *सन्देश रासक* में वियोग शृंगार का सुन्दर वर्णन हुआ है।

4.2. मुंजरास

सिद्ध हेम, प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह आदि ग्रन्थों में दिए गए हवाले से यह साबित होता है कि इन रचनाओं से पूर्व मुंजराज के चरित्र को लेकर अपभ्रंश में कोई काव्य लिखा गया था। यह अनुमान किया गया है कि इस काव्य का नाम *मुंजरास* या *मुंजरासक* रहा होगा। अब तक इस ग्रन्थ की कोई प्रति प्राप्त नहीं हुई है।

मुंजरास का रचनाकाल सं. 1031 से 1052 वि. के बीच माना जाता है।

कर्नाटक के राजा तैलप से मुंज की घोर दुश्मनी थी। तैलप की ताकत का पता लगाए बिना जल्दबाजी में मुंज ने उस पर आक्रमण कर दिया। मुंज पराजित हुआ। वह बन्दी बना लिया गया। उसी बन्दीगृह में तैलप की विधवा बहिन मृणालवती भी कैदी थी। मुंज को उससे प्रेम हो गया। मुंज ने बन्दीगृह से भागने की योजना बनाई और मृणालवती को अपने साथ ले जाना चाहा। मृणालवती भागना नहीं चाहती थी और यह भी नहीं चाहती थी कि उसे मुंज से अलग होना पड़े। उसने इस योजना की जानकारी तैलप को दे दी। मुंज की योजना सफल नहीं हुई। तैलप ने उसका घोर अपमान किया और उसे हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया।

4.3. बीसलदेव रास

बीसलदेव रास मुख्यतः विरह काव्य है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह हैं। इसका रचनाकाल विवाद का विषय रहा है। रचनाकार ने सं. 1212 वि. में इस ग्रन्थ के प्रणयन का संकेत किया है। उसने लिखा है –

बारह सै बहोत्तरां मझारि। जेठ बदी नवमी बुधवारि।
'नाल्ह' रसायण आरम्भहि। सारदा तूठी ब्रह्मकुमारी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस ग्रन्थ की रचना तिथि सं. 1212 को सही ठहराया है, पर कथ्य की प्रामाणिकता और कालखण्ड पर सन्देह व्यक्त किया है। बीसलदेव रास की रचना लगभग सवा सौ छन्दों में हुई है। इस काव्य में अजमेर के चहुआन नरेश बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के परदेश जाने और उसकी रानी राजमती के वियोग और सन्देश भेजने तथा बीसलदेव के वापस लौटने की कथा कही गई है। यह कथा चार खण्डों में विभाजित है –

1. मालवा के भोज परमार की पुत्री राजमती का साम्भर नरेश बीसलदेव से विवाह।
2. राजमती से रूठकर बीसलदेव का उड़ीसा जाना और वहाँ एक साल तक रहना।
3. राजमती का विरह वर्णन और बीसलदेव का उड़ीसा से लौटना।
4. भोज का अपनी पुत्री को मालवा लाना तथा बीसलदेव द्वारा वहाँ जाकर राजमती को अपने घर ले आना।

बीसलदेव के प्रवास के समय कवि ने रानी की विरह व्यथा का बड़ा ही सुन्दर और चित्ताकर्षक वर्णन किया है। इस रचना में प्रारम्भ से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण रचना गेय है।

4.4. बुद्धि रासो

बुद्धि रासो के रचयिता कवि जल्ह हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि कवि जल्ह चन्दबरदाई का बेटा जल्हण है, जिसे *पृथ्वीराज रासो* की रचना का भार सौंपकर चन्द गोर देश चला गया था। *बुद्धिरासो* के रचनाकाल के बारे में प्रामाणिक तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। अब तक यह ग्रन्थ अप्रकाशित है। इसके अध्येताओं ने जो कुछ लिखा है, उसी के आधार पर इस ग्रन्थ पर प्रकाश डाला जा सकता है। माताप्रसाद गुप्त के अनुसार यह रचना 140 छन्दों में समाप्त हुई है और इसमें दोहा, छप्पय, गाहा, पद्धड़िया, मुडिल्ल आदि छन्द व्यवहृत हुए हैं। यह एक प्रेमकथा है। चम्पावती नगरी का राजकुमार राजधानी से आकर कुछ दिनों के लिए जलधितरंगिनी के साथ समुद्र के किनारे किसी स्थान पर रहता है। कुछ समय बाद एक मास में लौटने का वचन देकर वह कहीं चला जाता है। अवधि के बाद भी कई मास बीत जाते हैं, किन्तु वह लौटता नहीं, तब विरहणी जलधितरंगिनी जीवन से विरक्त हो जाती है और अपने आभूषण आदि उतार फेंकती है।

इस पर उसकी माँ उसके समक्ष संसार के विलास-वैभव तथा शारीरिक सुखों की महत्ता का प्रतिपादन करने लगती है। इतने ही में राजकुमार वापस आ पहुँचता है और दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है, जिसके अनन्तर दोनों आनन्द और उत्साह के साथ जीवन व्यतीत करने लगते हैं।

इन सभी रासो ग्रन्थों में शृंगार (विशेष रूप से वियोग शृंगार) का सुन्दर वर्णन हुआ है। काव्य की दृष्टि से *सन्देशरासक* और *बीसलदेव रास* को छोड़कर अन्य किसी ग्रन्थ का कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

5. वीररसात्मक रासो ग्रन्थ

रासो परम्परा के अन्तर्गत ऐसे भी रासो ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है जो वीरता, शौर्य और ओज से परिपूर्ण हैं। प्रमुख वीररसात्मक रासो ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है –

5.1. भरतेश्वर बाहुबली रास

भरतेश्वर बाहुबली रास की रचना शालिभद्र सूरि ने सं. 1241 वि. में की है। इसमें अयोध्या के राज ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबली के बीच राज्य के लिए हुए संघर्ष की कथा है। भरतेश्वर राजा होकर अश्वमेध यज्ञ करता है, परन्तु बाहुबली उसकी अधीनता अस्वीकार कर देता है। दोनों भाइयों में तेरह दिनों तक भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध के माध्यम से कवि ने सैन्य-वर्णन तथा युद्ध वर्णन पूरे मनोयोग से किया है। इसकी कथा 203 छन्दों में समाप्त हुई है। यह रचना गेय है।

5.2. पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो की रचना कवि चन्दबरदाई ने की है। यह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। माना जाता है कि दिल्ली नरेश पृथ्वीराज और चन्दबरदाई समकालीन थे। कहा तो यह जाता है कि ये दोनों एक ही दिन पैदा हुए थे। जो भी हो, ऐसा लगता है कि दोनों बाल सखा थे। *पृथ्वीराज रासो* एक विशाल ग्रन्थ है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हैं। *पृथ्वीराज रासो* के मूल आकार-प्रकार को लेकर विद्वानों में मतभेद है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकासित *पृथ्वीराज रासो* की कथा 69 समयों (सर्गों) में विभक्त है। दो खण्डों के इस ग्रन्थ में लगभग 2400 पृष्ठ हैं। माताप्रसाद गुप्त ने *पृथ्वीराज रासउ* का सम्पादन केवल बारह सर्गों में किया है। इसी तरह *पृथ्वीराजरासो* का संक्षिप्त संस्करण भी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और नामवर सिंह ने तैयार किया है और कहा है कि मूल ग्रन्थ यही है। दरअसल, पृथ्वीराज रासो एक विकसनशील महाकाव्य है जिसका लेखन अलग-अलग कालों में अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा हुआ है।

रासो काव्यधारा में पृथ्वीराज रासो प्रकाश स्तम्भ की भाँति है। इसका कथानक राजपूत नरेशों और सामन्तों की वीरता, शौर्य सम्पन्न विजयों और पराक्रमपूर्ण गौरवगाथा से अनुस्यूत है। पृथ्वीराज रासो के नायक हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान हैं। कवि ने इस रचना में पृथ्वीराज चौहान के विवाह, विजय, युद्धों और आखेट वर्णनों का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है। इस ग्रन्थ में वीर और शृंगार रस का अद्भुत समन्वय हुआ है।

पृथ्वीराज रासो के यृद्ध वर्णन, सेना वर्णन और आखेट वर्णन में वीर रस की प्रधानता है और पृथ्वीराज के विवाहों के वर्णन में शृंगार रस की प्रधानता है। पृथ्वीराज और संयोगिता के प्रेमवर्णन तथा विवाह वर्णन में कवि का मन खूब रमा

है। भारत के महान वीर, अदम्य उत्साही और यशस्वी सम्राट पृथ्वीराज के यश का गान इस कृति का मूल उद्देश्य है। रासो काव्य परम्परा का यह सर्वश्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण काव्य है।

इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता, भाषा आदि अनेक पक्षों पर विचार करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "भाषा की कसौटी पर यदि ग्रन्थ को कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह बिलकुल बेठिकाने है – उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारान्त शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है, जैसे कि संस्कृत, प्राकृत कि नकल की हो। कहीं कहीं तो भाषा आधुनिक साँचे में ढली-सी दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं, पर साथ ही कहीं कहीं भाषा अपने असली प्राचीन साहित्यिक रूप में भी पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के साथ-साथ शब्दों के रूपों और विभक्तियों के चिह्न पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण, यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के जिज्ञासुओं के काम का है।" (*हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. 31)

5.3. विजयपाल रासो

विजयपाल रासो की रचना संवत् 1607 वि. के आसपास नल्ह सिंह भाट द्वारा हुई। नल्ह सिंह भाट का प्रामाणिक जीवनवृत्त उपलब्ध नहीं हैं। विजयपाल रासो में कहा गया है कि इसका लेखक विजयगढ़ (करौली) के यदुवंशी शासक का दरबारी था। यदि इस कथन को सत्य मानें तो विजयपाल रासो का रचनाकाल सं. 1100 वि. के आसपास का ठहरेगा, जो एकदम असम्भव है। रचना में उल्लिखित तमाम वस्तुओं से यह साबित हो जाता है कि इस ग्रन्थ का प्रणयन सं. 1600 वि के आसपास हुआ है। इस कृति में विजयपाल की दिग्विजय का काव्यमय वर्णन हुआ है। रचना में वीर रस की प्रधानता है। अब तक इस कृति के 42 छन्द ही प्राप्त हो सके हैं।

5.4. परमाल रासो

परमाल रासो एक विवादास्पद कृति है। इसका मूल रूप क्या है, आज तक अज्ञात है। सं. 1976 वि. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा से *परमाल रासो* का प्रकाशन हुआ है। इसके सम्पादक बाबू श्यामसुन्दर दास हैं। श्यामसुन्दर दास ने जिन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर इसका सम्पादन किया है, उनके नाम महोबा खण्ड (सन् 1868) तथा *पृथ्वीराज रासो* (सन् 1792) है। इस कृति में पृथ्वीराज चौहान तथा परमार्दिदेव 'परमाल' के बीच हुए युद्ध का वर्णन है। वैसे इस कृति के बारे में इसके सम्पादक का मत गौरतलब है। इसी से रचना पर सम्यक प्रकाश पड़ जाता है। श्यामसुन्दरदास ने *परमाल रासो* की भूमिका में लिखा है – "जिन प्रतियों के आधार पर यह संस्करण सम्पादित हुआ है, उनमें यह नाम नहीं है, उनमें इसको चन्द कृत *पृथ्वीराज रासो* का महोबा खण्ड लिखा हुआ है,० किन्तु वास्तव में यह *पृथ्वीराज रासो* का महोबा खण्ड नहीं है वरन, उसमें वर्णित घटनाओं को लेकर मुख्यतः *पृथ्वीराज रासो* में दिए हुए एक वर्णन के आधार पर लिखा हुआ स्वतन्त्र ग्रन्थ है। यद्यपि इस ग्रन्थ का नाम मूल प्रतियों में *पृथ्वीराज रासो* दिया हुआ है, पर इस नाम से इसे प्रकाशित करना लोगों को भ्रम में डालना होता है, अतएव मैंने इसे *परमाल रासो* यह नाम देने का साहस किया है (*प्रमुख*

हिन्दी कवि और काव्य, ओमप्रकाश सिंह, पृ. 53-54)।" सम्पादक के इस वक्तव्य से *'परमाल रासो'* की वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है।

यह कृति 36 खण्डों में विभाजित है और महोबा के दो वीरों आल्हा और ऊदल से सम्बन्धित प्रचलित किंवदन्तियों के आधार पर लिखी गई है। इस कृति का न तो साहित्यिक महत्त्व है और न ही ऐतिहासिक।

5.5. खुमाण रासो

खुमाण रासो के रचयिता दलपति विजय हैं। इसका रचनाकाल 17 वीं शताब्दी माना जाता है। *खुमाण रासो* की कुछ प्रतियाँ ऐसी मिली हैं जिनमें राणा संग्राम सिंह द्वितीय तक का उल्लेख है। संग्राम सिंह का शासनकाल (वि. 1767-90) माना जाता है। ऐसी दशा में साफ जाहिर है कि यह रचना अठारहवीं शताब्दी वि. के अन्त की है। इस ग्रन्थ में मेवाड़ के सूर्यवंश की महत्ता का वर्णन किया गया है। कवि कहता है –

सूरजि बंस तणो सुजस वरणन करूँ विगत्ति।

सूर्यवंशी सम्राटों की वीरता और विजय का वर्णन ही इस कृति का उद्देश्य है।

5.6. शत्रुसाल रासो

छत्रसाल रासो के रचयिता बूँदी के राव डूंगरसी हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस ग्रन्थ की रचना सं. 1710 के आसपास हुई होगी। इस ग्रन्थ में बूँदी नरेश छत्रसाल की वीरता, पराक्रम और शौर्य का वर्णन किया गया है। इसमें कुल 500 के आसपास छन्द हैं। रचना वीर रस प्रधान है। कहा जाता है कि यह रचना *पृथ्वीराज रासो* के अनुकरण पर लिखी गई है।

5.7. हम्मीर रासो

हिन्दी साहित्य में *हम्मीर रासो* नामक दो ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। एक शारंगधर कृत और दूसरी जोधराज कृत। यहाँ हम जोधराज कृत *हम्मीर रासो* की चर्चा कर रहे हैं। इस ग्रन्थ में हम्मीर का वीर चरित्र विस्तार से वर्णित हुआ है। इस ग्रन्थ में वीर रस की प्रधानता है और अनेक अनैतिहासिक तथ्यों का समावेश है। इसमें उल्लिखित है कि हम्मीर के आत्मघात के पश्चात अलाउद्दीन समुद्र में कूदकर प्राण दे देता है, यह इतिहास सम्मत नहीं है। इस कृति की छन्द संख्या लगभग एक हजार है।

इन रासो ग्रन्थों के अलावा कुछ अन्य रासो ग्रन्थ भी हैं, जैसे – गिरधर चारण का *सगत सिंह रासो* (18वीं शताब्दी वि.), सदानन्द का *रासा भगवत सिंह का* (18वीं शताब्दी वि.), श्रीधर का *परीछत रायसा* (19वीं शताब्दी वि.) आदि।

6. निष्कर्ष

इन रासो ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि हिन्दी साहित्य में रासो ग्रन्थों की एक समृद्ध परम्परा है। यह परम्परा आदिकाल से लेकर 19वीं शताब्दी तक विद्यमान थी। हिन्दी साहित्य में उपदेशमूलक धार्मिक रासो काव्यों का महत्त्व कम है पर

शृंगारपरक और वीररसात्मक काव्यों का अद्वितीय स्थान है। रासो काव्य-परम्परा में *पृथ्वीराज रासो* सर्वश्रेष्ठ रचना है। कवि ने वीर और शृंगार रस का जैसा मार्मिक वर्णन इस ग्रन्थ में किया है, अन्यत्र दुर्लभ है।

A Gateway to All Post Graduate Courses